ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

भक्तिकालीन साहित्य मे विभिन्न विमर्श

KEY WORDS:

दीपक कुमार एम. ए. हिन्दी नैट, हाउस न.15/333 भक्त सिंह कॉलोनी, बरनाला रोड़ सिरसा -125055।

21वीं शताब्दी के इस दौर में विमर्शों की एक लहर समाज से लेकर साहित्य तक फैली हुई है जिसका कारण इस समाज रूपी समुद्र में सदियों से बह रही हवा का बदला रुख है। इन साहित्यिक विमर्शों ने हाशिये के समाज की अस्मिता के प्रश्न को आगे कर अपनी जमीन तैयार की है। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में भी आज के इन विमर्शों की अस्मिताओं के बिंदुओं को देखा जा सकता है।

भारतीय समाज-व्यवस्था में विषमता का प्रमुख कारण वर्ण-व्यवस्था रही है जिसमें ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने का हवाला देकर ब्राह्मणवादियों ने स्वयं के लिए समाज में उच्च स्थान निर्धारित कर लिया था। इसी जन्मजात असमानता के सिद्धान्त को लेकर सवाल उठे और भारतीय मध्ययुगीन समाज में भक्ति आंदोलन उभर कर सामने आया। कहा जाता है कि भक्ति दक्षिण भारत से उत्तर भारत आयी जिसे रामानंद लाए। लेकिन उत्तर भारत में सिद्धों-नाथों में भी भक्ति की परंपरा विद्यमान थी जिन्होंने मानवीय समानता की उच्च भूमि तैयार की किंतु चर्चित रूप से भक्ति आंदोलन की शुरुआत कबीर की निर्गुण भक्ति से होती है। यह निर्गुण भक्ति, सिद्धों और नाथों द्वारा बनायी गयी मानवीय समानता की भूमि में नामदेव द्वारा बोये गए बीज का फल है। आचार्य शुक्ल कबीर के संबंध में सही कहते हैं कि "मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्म गौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की और बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। पंथ चल निकला जिसमें नानक, दादू, मलूकदास आदि अनेक संत हुए।"1इनमें से अधिकांश कवि निम्न श्रेणी की जनता से ही आए थे जिनमें मनुष्यत्व की भावना कूट-कूट कर भरी थी। क्या कारण थे कि पहली बार भक्ति के क्षेत्र में शूद्र और नारी भक्तों को आना पड़ा? ये सभी निर्गुण कवि वर्णाश्रम धर्म से पीड़ित थे, इसलिए इनका मुख्य उद्देश्य समता मूलक समाज का की स्थापना और वर्णाश्रम धर्म का विरोध करना रहा है। जिस अंधी आध्यात्मिकता के कारण वर्ण-व्यवस्था की उपज हुई थी, उसके ठेकेदार ब्राह्मण ओर सामंती लोग ही थे जिनके कारण निम्न जाति के लोग यातनाएँ सह रहे थे। वर्ण-व्यवस्था के ऐसे आवरण को ओढ़कर वे कैसे सो सकते थे? भक्ति-काव्य के मूल में मनुष्यत्व की भावना प्रमुख थी जिसके चलते भक्ति-काव्य के प्रेम ने भक्ति के धरातल पर समाज-व्यवस्था में हाशिये पर रखे गए शूद्रों को सवर्णों और स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार भी दिया। तत्कालीन परिस्थितियों के कारण दलित जातियों में विद्रोह की भावना जगी जिसे हम संत साहित्य के रूप में देख सकते हैं।
भक्ति आंदोलन के उद्भव में प्रमुखत: सामाजिक और आर्थिक कारण ही काम करते हैं। इसके प्रमाण रूप में प्रो. इरफान हबीब, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा तथा मैनेजर पाण्डेय के मतों को देखा जा सकता है। तत्कालीन सामान्य जनता का कष्ट तथा अन्य परिस्थितियों का भी योगदान रहा है।

महत्वपूर्ण सवाल यह है कि जिस ईश्वर की कल्पना से शूद्रों और स्त्रियों को यातनाएँ सहनी पड़ी उसी ईश्वर की भक्ति को आंदोलन का आधार क्यों बनाया गया ? इसके पीछे रामानुज और रामानंद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने भक्ति तथा उपासना के क्षेत्र में सभी जाति धर्म के लोगों के लिए भक्ति के द्वार खोल दिए थे। भक्ति में भावना के धरातल पर सभी को समान माना गया था। तब ब्राह्मणवादियों की यातनाओं से त्रस्त दलित और नारियों को अपनी रक्षा के लिए तथा मानव-समानता की भावना के प्रचार के लिए एक ही मार्ग बचा था, भक्ति का। इसलिए अगम-अगोचर परम सत्ता के शरण में जाना पड़ा। इन संत कवियों में स्त्री-पुरुष, हिंदू-मुसलमान, सगुणवादी-निर्गुणवादी सभी हैं। इस भक्ति साहित्य में सगुण और निर्गुण धाराएँ भले ही परस्पर विरोधी लगती हैं किंतु दोनों का मुख्य उद्देश्य एक ही है और वह है, मानव मात्र की समानता की भावना जिसका प्रभाव सामाजिक संरचना तथा सामान्य जनता पर भी पड़ा। हरिनारायण ठाकुर ने इन दोनों में अंतर और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "भक्ति आंदोलन के परस्पर विरोधी से लगने वाले दोनों खेमों को यदि गौर से देखें तो पाएँगे कि एक (सगुण) का विरोध परंपरागत उदारता की सीमा में है तो दूसरा (निर्गुण) पूर्णत: क्रांतिकारी है। परिवर्तन दोनों चाहते हैं, मुक्ति की छटपटाहट दोनों में है; किंतु एक की मुक्ति चेतना व्यवस्था में सुधार देखना चाहती है; जबकि दूसरा आमूलचूल परिवर्तन कर नयी व्यवस्था गढ़ना चाहता है। विचारधारा में सभी धर्म और संप्रदाय अलग-अलग हैं पर भक्ति के मामले में सभी एक हैं।"2 हरिनारायण ठाकुर ने संपूर्ण संत साहित्य पर दलितों का प्रभाव मानते हुए उसे मानववादी दलित चिंतन से भरा बताया है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार, "सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता और अनेक दूसरी सांमंती रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष में प्रेरणा का एक अक्षय स्रोत है भक्त कवियों की कविता।"3 मेरा यहाँ मुख्य उद्देश्य भक्तिकालीन प्रमुख कवियों की विचारधारा में मिलने वाले विमर्शों के प्रेरणात्मक बिंदुओं को देखना रहेगा।

भक्ति साहित्य से दलित विमर्श को मिलने वाले प्रेरणा-स्रोत का मूल रूप है, कबीर की विचारधारा। कबीर अपने समाज में व्याप्त जाति-पाँति, अंधविश्वास, छूआ-छूत, रूढ़िवादिता, हिंदू-मुसलमान के धार्मिक पाखंड तथा बाह्याडंबरों का खुलकर विरोध किया है। लोकधर्मा भक्ति संप्रदाय को जनान्दोलन का रूप देने के लिए वे लुकाठी लिए खड़े, बाजार में गुहार लगा रहे थे- कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ। / जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ।।

जाति-प्रथा की निंदा करते हुए हिंदू और मुसलमान दोनों से प्रश्न किया है-
जो तू बाँभन बाँभनी जाया, आन बाट हवै क्यों नहीं आया ?
जो तू तुरक तुरकिनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया ?

तत्कालीन सांमतवादी समाज-व्यवस्था में समाज के ठेकेदारों का विरोध करना अपने आप में साहस का काम है। ऐसा काम वही कर सकता है जिसे परिणाम की चिंता नहीं होती है। मनुष्यत्व की भावना को रखते हुए अति तार्किक रूप से ब्राह्मणवादियों से कबीर ने प्रश्न किया है-

"हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम कैसे ब्राह्मण पाण्डे हम कैसे सूद।।"

कबीर शुरू से ही लोगों को मनुष्यत्व को अपनाने के लिए प्ररित करते हैं। इन सब के पीछे उनका सामाजिक अनुभव काम करता है। वे अनुभव के ज्ञान को महत्व देते हुए शास्त्रीय पण्डित को चुनौती देते हैं- तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखिन की देखी। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार, "बिरला ही कोई निर्भय होकर अपने अनुभव का सच कहता है। वही कबीर होता है; कल, आज और कल भी"4

तत्कालीन समाज में साधारण जन अंधविश्वास से ग्रस्त थे। ऐसा लोकविश्वास था कि काशी में मरने से मोक्ष प्राप्ति मिलेगी। इस लोकविश्वास को तोड़ने के लिए कबीर ने मगहर में जाकर समाधि ली, क्योंकि अपने परमतत्व को वे स्वयं में देखते हैं। काशी में मरने पर तो मुक्ति मिलती ही है, उसमें 'राम' का क्या ? राम का रामत्व तो तब है कि वह अपने भक्त को हर कहीं सँभाले। इस अंधविश्वास में जिने वालों को सावधान करते हुए कहते हैं -'लोका तुम हो मति के भोरा। जो कासी तन तजै कबीरा तो रामहीं कहा निहोरा रे।।' कबीर की इस विचारधारा से हिंदी दलित आंदोलन प्रेरित और प्रभावित होता रहा है और रहेगा।

जायसी कबीर की तुलना में भले ही विद्रोही न हो पर सामंती व्यवस्था के शासकों को अपनी औकात दिखाने में पीछे नहीं रहे हैं। प्रेम के पीर के कवि जायसी ने धर्म-निरपेक्ष भाव से प्रेम तत्व को आगे कर सामंती व्यवस्था का विरोध किया है। जायसी का सेक्यूलर मन उनका एक विशेष गुण है, यह उनकी मानवीयता है जिसका प्रमाण 'पद्मावत' में चित्रित हिंदू-मुसलमान चरित्र हैं। मुसलमान होते हुए हिंदुओं के रीति-रिवाजों, लोक-विश्वासों, आचार-विचारों, धार्मिक-आध्यात्मिक आस्थाओं को सहानुभूति एवं संवेदना के साथ चित्रित किया है। इसके पीछे उनकी धार्मिकता न होकर मानवीयता है। जायसी ने हिंदू-मुसलमान दोनों शासकों के सामंती व्यवस्था के यथार्थ का चित्रण किया है। अप्रत्यक्ष रूप से दोनों शासकों को समाज से विमुख दिखाकर सामंती व्यवस्था के शासकों को मोह-माया से ग्रस्त बताया है। उन्होंने अल्लाउद्दीन के माध्यम से मोह-माया को झूठ ठहरायाहै

"छार उठाई लीन्ही इक मूठी। दीन्हीं डारि परिथिमि झूठी।।"

जायसी दिल्ली के बादशाह को शैतान रूप में देखते हैं और सामंतवाद का विरोध करते हैं। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में, "सामंती राजसत्ता के प्रति जायसी का दृष्टिकोण दिल्लीश्वर को जगदीश्वर कहनेवालों से एकदम भिन्न था।"[5] जायसी के यहाँ मूठी भर राख एक सांकेतिक रूप में उभरकर आता है। मोह-माया ऐसे धार्मिक युद्धों में पड़कर दोनों शासकों के हाथ अंत में कुछ नहीं लगता है, उसका परिणाम विनाश में होता है। विजयदेव नारायण साही ने लिखा है कि "जायसी मध्यकाल के एकमात्र कवि हैं जो अपने समय के, मध्यकाल के इतिहास या कहें, उस इतिहास की त्रासदी से मुठभेड़ करते हैं, उसे हमारे समक्ष मूर्त करते हैं।"6

जायसी ने गोरा और लबादल के रूप में उन सामान्य जल का चित्रण किया है जो शासक वर्ग की रक्षा के लिए किसी भी अन्याय तथा अत्याचार को सहते हुए स्वयं के अंत के लिए तैयार रहते हैं।

जायसी के समान सूरदास भी सामंती व्यवस्था का विरोध करते दिखते हैं। वे ऐसे परिप्रेक्ष्य में काव्य रच रहे हैं, जहाँ समाज में सामंतों का वर्चस्व था, सामान्य जनता दुःख-दर्द, अन्याय की पीड़ा से त्रस्त थी। वे ऐसे समाज से मुक्ति के लिए काल्पनिक वृंदावन की निर्मिती करते हैं जिसमें समाज सामंती आतंक से मुक्त है। अप्रत्यक्ष रूप से वे किसान जीवन के यथार्थ को उभारते हैं तथा सामंतों द्वारा किसान की लूट को दर्शाते हैं -

"धर्म जमानत मिल्यौ न चाहे, तातै ठाकुर लूटौ।
अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही।"
इसीलिए मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि "सूर की इस सजगता से जाहिर है कि वे अपने समय के समाज से बेखबर कवि न थे।"7

विद्रोही कवयित्री मीराबाई ने शूद्र संत रैदास को गुरु बनाकर एक प्रकार से अपने समाज की दलित स्त्रियों का अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिनिधित्व ही किया है। इनकी मान्यताओं को स्त्री-विमर्श के संबंध में आगे देखा जाएगा।

वर्ण-व्यवस्था के समर्थन के आरोपी कवि तुलसीदास भी अपने समय के सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने में पीछे नहीं रहे। अपने समय की समाज-व्यवस्था को देखकर ही तुलसीदास 'रामचरितमानस' में रामराज्य की कल्पना कर एक अच्छे समाज का निर्माण करना चाहते हैं। ऐसा समाज जिसमें किसी प्रकार का भदभाव न हो, जिसका आधार तत्व प्रेम है। तुलसीदास भक्ति के माध्यम से मानव समानता की बात करते हैं। उन्होंने पुरोहित वर्ग के विरोध में जाकर सामान्य जन के लिए उपासना और भक्ति के द्वार खोल दिए थे जिसके कारण उन्हें पुरोहितों द्वारा यातनाएँ सहनी पड़ीं। 'रामचरितमानस' में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहाँ तुलसी मानव समानता की बात करते दिखते हैं। वे राम के प्रिय जनों में समाज में उपेक्षित और निम्न कहे जाने वाले शबरी, केवट और निषाद जैसे चरित्रों को दिखाते हैं। यहाँ तक कि एक प्रसंग में निषाद को राम का भ्राता कहते हैं- तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।। उसी प्रकार केवट को सम का सखा बनाना, कोल किरातों से राम का भेंट कराना, शूद्र शबरी के जूठे बेर खाते हुए राम को दिखाना आदि से एक प्रकार से तुलसीदास ऊँच-नीच के भेदभाव को ही तोड़ना चाहते हैं। रामविलास शर्मा के शब्दों में कहना चाहूँगा कि "उन्होंने (तुलसीदास ने) समाज के इतर जनों का पक्ष लिया और राम के प्रेम के आधार पर उनकी समानता की घोषणा की। उनकी भक्ति का यह सामंत-विरोधी मूल्य है जिसे हमें अपनाना चाहिए और समाज में ऊँच-नीच का भेद, आभीर जवन किरात खस स्वपचादि का भेद सदा के लिए खत्म कर देना चाहिए।"8

तुलसी के मानस में वर्ण-व्यवस्था के होते हुए भी सरयू के राजघाट पर चारों वर्णों के लोगों को एक साथ स्नान करते हुए दिखते हैं- राज घाट सब विधि सुन्दर वर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।। क्या इस सबके बावजूद तुलसी को दलित विरोधी कहा जाएगा ?

इतना ही नहीं तो कवितावली और विनयपत्रिका में उनके यथार्थवादी आत्मसंघर्ष को देखा जा सकता है। रामविलास शर्मा के शब्दों में, "तुलसी ने कवितावली और विनयपत्रिका के अनेक पदों में अपनी व्यथा का वर्णन किया है।...तुलसी ने स्वयं ही कष्ट नहीं सहे थे वरन् सारे देश को कष्ट सहते देखा था। तुलसी की महत्ता का सबसे बड़ा कारण यह है कि मध्यकालीन कवियों में वह जनता की वेदना को सबसे ज्यादा समझते थे।"9 अपने कष्ट के कारण ही वे कहते हैं-'माँगि कै खैबो मसीत मेंको सोइबो लेबे को एक न देबे को दोऊ।' इसी कारण अपने विरोधियों से खीझकर कहते हैं- 'मेरे जाति-पाँति न चहौ काहू की जाति-पाँति, मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।' तथा 'धूत कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।'

तुलसी यदि परंपरावादी थे तो उन्हें अपनों द्वारा ही विरोध क्यो सहना पड़ा? तुलसी ने अपने समय के सामंती कुशासन में भूख से पीड़ित जनता की दरिद्रता का यथार्थ वर्णन भी किया है- 'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।' ऐसे अनेक बिंदु हैं जो तुलसी को सामान्य जन के पक्ष में खड़े करते हैं।

भक्ति साहित्य के कवियों के ये वैचारिक बिंदु आज के समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जाति-पाति के भादभाव को मिटाने के लिए दलित विमर्श के हथियार के रूप में काम आ रहे हैं। भक्तिकालीन इन कवियों ने कम-अधिक मात्रा में क्यों न हो लेकिन बराबर अपने समाज के कुशासन तथा कुसंरचना की चुनौतियों से आधुनिक बोध के साथ दो-चार करने में कभी आगा-पीछा नहीं किया। भले ही उनके भक्ति पर चलने के मार्ग अलग-अलग रहे हो किंतु सबकी मंजिल एक ही थी। कोई प्रत्यक्ष, यथार्थ रूप में, कोई काल्पनिक रूप में तो कोई काल्पनिक और यथार्थ दोनों रूपों में समाज का चित्रण करता है। व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्नता होती है और हर किसी की एक सीमा होती है इसलिए सभी से एक जैसी आशा करना भी उचित नहीं जान पड़ता है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर आज के दलित विमर्श के दौर में भक्ति साहित्य का योगदान मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

भारतीय रीति-रिवाजों और परंपरा में सदियों से जकड़ी नारी अपनी मुक्ति के लिए आज संघर्ष करते दिखाई देती है। भारतीय समाज में परंपरा से दासी का जीवन जी रही स्त्रियों द्वारा अपनी अस्मिता के लिए सर्वप्रथम भक्ति के रूप में आंदोलन किया गया जिसमें स्त्री-पुरुष के भेदभाव को अस्वीकार किया गया। तत्कालीन सामंती समाज में नारी केवल उपभोग की वस्तु थी। उसे बंधनों की चारदीवारी से बाहर निकालने के लिए भक्ति साहित्य के कवियों ने खासकर सूर और मीरा ने प्रेम तत्व के माध्यम से उसके स्वतंत्र रूप को उभारा है। कबीर, जायसी और तुलसी के स्त्री-दृष्टिकोण में तत्कालीन शास्त्र और लोक का द्वंद्व विद्यमान है। फिर भी इन कवियों के द्वारा स्त्रियों की पीड़ा को महसूस करने से नकारा नहीं जा सकता है।

कबीर के नारी-दृष्टिकोण में शास्त्र और प्रत्यक्ष अनुभव का अंतर्विरोध है। उन्होंने नारी-निंदा वहीं की है जहाँ शास्त्र-ज्ञान के आवरण को ओढ़े हुए थे। स्त्री-निंदा के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य स्त्री के सामंती रूप की निंदा करना था। अर्थात् माया और वासना के दलदल में फँसी नारीयों का उन्होंने विरोध किया है। पूनम कुमारी के अनुसार, "स्त्री प्रेम की निश्चलता और पवित्रता के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ही उन्होंने परमात्मा के प्रति अपना प्रेम और समर्पण व्यक्त करने के लिए पतिन अथवा माता का रूप चुना- हरि मोर पिऊ मैं राम की बहुरिया अथवा हर जननी मैं बालक तोरा।"10 उसी प्रकार साई के संग सासुर आई तथा दुलहिनि गांवहु मंगलाचार जैसी उक्तियों में उनका स्वयं को स्त्री मानना, स्त्री को स्वतंत्र रूप में देखना ही है। इस संदर्भ में पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कहा है कि "कितना रोचक है यह विरोधाभास कि यही कबीर जब परमात्मा के प्रति अपना प्रेम और समर्पण व्यक्त करना चाहते हैं तो कविता में नारी बन जाते हैं, जैसे शरीर-रचना और समाज-रचना से प्राप्त पुरुषत्व का दर्प आत्मा के निश्चल प्रेम को वहन करने में असमर्थ है।"11

जायसी के नारी-दृष्टिकोण में भी लोक और शास्त्र का द्वंद्व विद्यमान है। लोक के आधार पर उन्होंने स्त्री को परमात्मा के रूप स्वतंत्र बताया है। पद्मावत में उन्होंने नागमती के रूप में स्त्रियों के सामंती बंधनों को चित्रित किया है तो दूसरी ओर पद्मावती के रूप में स्त्रियों की स्वतंत्रता की ओर संकेत किया है। यहाँ तक कि अल्लाउद्दीन द्वारा रत्नसेन को बंदी बनाने के बाद उसे छुड़ाकर लाने में पद्मावती के रूप में स्त्री की बौद्धिक दृष्टि का भी परिचय दिया तो नागमती के रूप में उसे मतिमंद कहा है।

मानसरोवर खंड में पद्मावती और सखियों के द्वारा मानसरोवर में स्नान करते, खेलते दिखाकर स्त्रियों की स्वतंत्रता का, तो विवाहोपरांत जीवन की पराधीनता के संबंध में सखियों के वार्तालाप के रूप में स्त्रियों की पराधीनता का भी वर्णन किया है। इस प्रकार का संतुलन जायसी के यहाँ बराबर दिखाई देता है।

तुलसी के स्त्री-दृष्टिकोण में भी अंतर्विरोध को पाया जाता है। तुलसी के लिए वे सभी आदर्श के पात्र है जो रामभक्ति में संलग्न हैं। फिर वह चाहे रावण की पत्नी मंदोदरी ही क्यों न हो? इसीलिए शूद्र स्त्री शबरी भी उनकी कृपा पात्र बनी हुई है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "तुलसीदास ने स्त्रियों के लिए उपासना के द्वार खोल दिये। राम से मिलने, उनका स्वागत सत्कार करने, उनका स्नेह पाने में स्त्रियाँ सबसे आगे रहती हैं।...जितनी आत्मीयता तुलसी ने परस्पर ग्रामीण स्त्रियों और सीता में दिखायी है, उतनी राम, भरत या निषाद में भी नहीं दिखायी।"12 सर्वप्रथम तुलसीदास ने ही पुरुषों के लिए पत्नीव्रत का आदेश दिया है। अजय तिवारी के शब्दों में, "नारियों के लिए पराधीनता का पर्याय एवं पातिव्रत का नियम पहले से था, तुलसी ने उसकी स्वाधीनता के विचार से पुरुष के लिए पत्नीव्रत का आदेश स्थापित किया है।"13

तत्कालीन सामंती समाज में स्त्रियों द्वारा प्रेम करना एक कठिन कार्य था। किंतु तुलसी ने सीता को राम से प्रेम करते हुए स्वतंत्र नारी के रूप में दिखाया है। इतना ही नहीं, वे तो स्त्रियों की पराधीनता की पीड़ा को भी महसूस करते हैं- कत बिधि सृजी नारी जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।। उसी प्रकार माता कौशल्या की पीड़ा को भी दर्शाते हैं। वे एक प्रकार से स्त्रियों के प्रति आदर रखते हुए स्त्री और पुरुष में समानता को दर्शाते हैं।

सूरदास ने स्त्री-चित्रण माँ और प्रेमिका के रूप में किया है। उन्होंने कृष्ण के बाल-वर्णन से माता यशोदा के रूप में स्त्री के मातृत्वता को सम्मानित किया है। उसी प्रकार रासलीला के प्रसंग में कृष्ण से प्रेम करने वाली गोपियों को घर से बाहर दौड़ती हुई स्वतंत्र रूप में दिखाकर सामंती व्यवस्था के बंधनों को तोड़ने का प्रयास किया है। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, "घर का यह तोड़ना असामाजिक नहीं, सामाजिक नियमों की अमानवीयता, असामाजिकता को तोड़ना है।"14

सामंती समाज में घर-परिवार की चारदीवारी में रहकर जीवन यापन करने वाली नारी की कुचली हुई अस्मिता को सूर अपने श्रृंगार-वर्णन के माध्यम से उसकी समस्त आकांक्षाओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। अपनी अस्मिता के कारण ही गोपियाँ कृष्ण से मिलने मथुरा नहीं जाती हैं, स्वतंत्र रूप से वे उद्धव से अपने प्रेमी के बारे में पूछती हैं। सूरदास नारी-अस्मिता को पहचान कर उनकी मुक्ति की कामना करते वाले(भक्तिकाल के) एकमेव पुरुष कवि हैं।

मीराबाई स्वयं एक सामंती परिवार में उत्पन्न स्त्री भक्त है जो अपने पितामह की वैष्णव भक्ति के प्रभाव के कारण कृष्ण की भक्ति कर बचपन में ही कृष्ण को अपना पति मान लेती है। इसीलिए लौकिक रूप से

अपने विधवा होने के पश्चात् सती जाने का विरोध करती है- भजन करस्याँ सती न होस्याँ मन मोह्यो घणमानी। ऐसा करके मीरा ने न केवल सामंती बंधनों को तोड़ा बल्कि अपने समकालीन कवि कबीर, जायसी (जिन्होंने सती-प्रथा का महिमामंड़न किया) को भी चुनौती दी है। उसी प्रकार मीरा लोक-लाज और मर्यादाओं को तोड़ने की घोषणा करती हैं- लोक लाज कुल कुल की मरजाद यामें एक न राखूँगी। मर्यादाओं को तोड़ने के कारण ही मीरा को समाज तथा परिवार वालों की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं- हेली म्हासूँ हरि बिन रह्यो न जाय। सास लड़े मेरी ननद खिजावै राणा रह्या रिसाय। पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो तालो दियो जड़ाए। सूर ने यहाँ स्त्री को पीड़ा पहुँचाने में स्त्री को ही जिम्मेदार बताया है। वह कृष्ण-मिलन की इच्छा के कारण घर की चारदीवारी के बंधनों को तोड़कर बाहर निकल आना चाहती है- मीरा तो गिरधर बिन देखे कैसे रहे घर बासिके। मीरा सबको ठुकराकर निर्भय होकर घर से बाहर आ जाती है। मीरा अपने माध्यम से तत्कालीन समाज के अत्याचार, पारिवारिक प्रताड़नाओं को सहती हुई साधारण नारी का भी अहसास कराती है। मीरा की कविता का यह दरद सदियों बाद भी करोंड़ों-करोड़ कंठों में जीवित है - हेरी म्हाँ तो दरद दिवाणी म्हाराँ दरद णा जाण्याँ कोय। अपने अराध्य श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबकर सारा दरद भूल जाती है और प्रेम बावली मीरा मंदिरों में स्वछंद भाव से नाच उठती है- पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची रे। इस संदर्भ में हरिनारायण ठाकुर कहते हैं कि "पर्दा प्रथा और मध्ययुगीन वर्जनाओं के उस कट्टर काल में भी मीरा ने न केवल घूँघट खोल मंदिर में नाचा, बल्कि उसने पुरुषवादी मानसिकता के विरुद्ध स्त्रियों के लिए घर से बाहर भक्ति का मार्ग भी खोल दिया।"15 मीरा अपने व्यक्तिगत विद्रोह के माध्यम से तत्कालीन स्त्रियों में चेतना लाने का प्रयास करती है। सूर की गोपियों के समान मीरा के यहाँ भी रीति-रिवाजों, मर्यादाओं को भक्ति के माध्यम से तोड़ा गया है। विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में, "मीराबाई की कविता भी भक्ति आंदोलन, उसकी विचारधारा और तत्कालीन समाज में नार-स्थिति से उनकी टकराहट का प्रतिफलन है।"16

मीरा की अमानवीय मानसिकता विरोधी विचारधारा के कारण ही शिवकुमार मिश्र मीरा को समकालीनता तथा स्त्री-विमर्श से जोड़कर देखते हैं- "वस्तुत: मीरा हमारी समकालीनता और चल रहे स्त्री-विमर्श की भागीदारी हैं- अपने उस प्रतिरोध तथा विद्रोह के नाते, जो उन्होंने अपने ऊपर लगाई गई पाबंदियों के खिलाफ किया।"17

निष्कर्ष - भक्तिकालीन इस हिन्दी साहित्य के कवियों की दलित और स्त्रीवादी विचारधारा ने अपनी अपनी काव्य-रचनाओं के माध्यम से किसी-न-किसी रूप में प्रश्न उठाए हैं और समाज परिवर्तन की आस जगाई है। इस काव्य रूपी भक्ति आंदोलन से सामान्य जनता को प्रेरणा मिली है। रामविलास शर्मा इसी प्रेरणा की बात करते हुए लिखते हैं कि "साम्राज्यवाद और सामंतवाद के उत्पीड़न और उनकी पतनोन्मुख संस्कृति के विरुद्ध भारतीय लेखक जब भी राष्ट्रीय और जनवादी साहित्य रचने की बात सोचेंगे, उन्हें संत साहित्य से प्रेरणा मिलेगी, उसमें सीखने के लिए बहुत-सी सामग्री मिलेगी।"18 यह भी सही है कि आज के दलित तथा स्त्री-विमर्श के रचनाकारों के सामने भक्ति साहित्य प्रेरणा के रूप में उपस्थित है। इस भक्तिकालीन समाज परिवर्तन की चिंता पुन: 21वीं शताब्दी में विमर्शों के माध्यम से उभरकर सामने आयी है जिसकी ओर से मुँह नहीं फेरा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 64
2. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, पृष्ठ 243-44
3. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ 21
4. वही, पृष्ठ 31
5. भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार, संपा. गोपेश्वर सिंह, पृष्ठ 140
6. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ 266
7. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ 298
8. परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 80
9. वही, पृष्ठ 52-53
10. स्त्री चेतना और मीरा का काव्य, पुनम कुमारी, पृष्ठ 35
11. स्त्री चेतना और मीरा का काव्य, पुनम कुमारी,पृष्ठ 35
12. परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 80
13. तुलसीदास का पुनर्मुल्यांकन, अजय तिवारी, पृष्ठ 104
14. मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 49
15. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, पृष्ठ 224
16. मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, (प्राक्कथन से)
17. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ 255
18. परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 56